सलाम

ओमप्रकाश वाल्मीकि

राधाकृष्ण

offsite
PK
2098.42
.A445
S25
2000g

ISBN 81-7119-593-8

सलाम (कहानी-संग्रह)
© श्रीमती चन्द्रकला

पहला संस्करण : 2000

मूल्य : 125 रुपए

प्रकाशक
राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
जी-17, जगतपुरी, दिल्ली-110 051

मुद्रक
बी. के. ऑफसेट
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110 032

SALAM (Short Stories) by Omprakash Valmiki

श्रद्धेय श्री राजेन्द्र यादव जी को...

पच्चीस चौका डेढ़ सौ

पहली तनख्वाह के रुपए हाथ में थामे सुदीप अभावों के गहरे अंधकार में रोशनी की उम्मीद से भर गया था। एक ऐसी खुशी उसके जिस्म में दिखाई पड़ रही थी जिसे पाने के लिए उसने असंख्य कँटीले झाड़-झंखाड़ों के बीच अपनी राह बनाई थी। हथेली में भींचे रुपयों की गर्मी उसकी रग-रग में उतर गई थी। पहली बार उसने इतने रुपए एक साथ देखे थे।

वह वर्तमान में जीना चाहता था। लेकिन भूतकाल उसका पीछा नहीं छोड़ रहा था। हर पल उसके भीतर वर्तमान और भूत की रस्साकसी चलती रहती थी। अभावों ने कदम-कदम पर उसे छला था। फिर भी उसने स्वयं को किसी तरह बचाकर रखा था। इसीलिए यह मामूली नौकरी भी उसके लिए बड़ी अहमियत रखती थी।

नई-नई नौकरी में छुट्टियाँ मिलना कठिन होता है। उसे भी आसानी से छुट्टी नहीं मिली थी। उसने रविवार की छुट्टियों में अतिरिक्त काम किया था, जिसके बदले उसे दो दिन का अवकाश मिल गया था। वह पहली तनख्वाह मिलने की खुशी अपने माँ-बाप के साथ बाँटना चाहता था।

स्कूल की पढ़ाई और नौकरी के बीच समय और हालात की गहरी खाई को वह पाट नहीं सकता था। फिर भी खाई के बीच जो कुछ भी था, उसे सांत्वना देकर उसकी पीड़ा को तो वह कम कर ही सकता था। सुख-दुःख के चंद लम्हे आपस में बाँटकर पीड़ा कम हो जाती है। उसने इस पल के इंतजार में एक लंबा सफर तय किया था। ऐसा सफर जिसमें दिन-रात और मान-अपमान के बीच अंतर ही नहीं था।

शहर से गाँव तक पहुँचने में दो-ढाई घंटे से ज्यादा लग जाते थे। इसीलिए वह सुबह ही निकल पड़ा था। बस अड्डे पर आते ही उसे बस मिल गई थी। बस में काफी भीड़ थी। बड़ी मुश्किल से उसे बैठने की जगह मिल पाई थी।

कंडक्टर किसी यात्री पर बिगड़ रहा था, "इस सामान को उठाओ। छत पर रखो। आने-जाने का रास्ता ही बंद कर दिया है। किसका है यह सामान ?" कंडक्टर ने ऊँचे और कर्कश स्वर में पूछा।

एक दुबला-पतला-सा ग्रामीण धीमे स्वर में बोला, "जी, मेरा है।" कंडक्टर ने ग्रामीण के वजूद को तौलते हुए आवाज सख्त करके लगभग दहाड़ते हुए कहा, "तेरा है तो इसे अपने पास रख। यहाँ रास्ते में क्यों अड़ा दिया है ? उठा इसे !"

ग्रामीण ने गिड़गिड़ाकर अजीब-सी मरियल आवाज में कहा, "साहब...नजदीक ही उतरना है..."

सुदीप जब भी किसी को गिड़गिड़ाते देखता है तो उसे अपने पिता जी की छवि याद आने लगती है। ऐसे में उसका पोर-पोर चटखने लगता है। जैसे कोई धीरे-धीरे उसके जिस्म पर आरी चला रहा हो।

उसने कंडक्टर की ओर देखा। कंडक्टर का तोंदियल शरीर कपड़े फाड़कर आने को छटपटा रहा था। बनैले सुअर की तरह उसके चेहरे पर पान से रँगे दाँत, उसकी भव्यता में इजाफ़ा कर रहे थे। सुदीप को लगा जंगली सुअर बस की भीड़ घुस आया है। उसने सहमकर सहयात्री की ओर देखा तो निरपेक्ष भाव से अपने खयालों में गुम था। सुदीप ने ग्रामीण पर नजर डाली जो अभी तक दयनीयता से उबर नहीं पाया था।

उसके भीतर पिता जी की छवि आकार लेने लगी। वह दिन स्मृति में दस्तक देने लगा जब पिता जी उसे लेकर स्कूल में दाखिल कराने ले गए थे। उनकी बस्ती के बच्चे स्कूल नहीं जाते थे। पता नहीं पिता जी के मन में यह विचार कैसे आया कि उसे स्कूल में भरती कराया जाए। जबकि पूरी बस्ती में पढ़ाई-लिखाई की ओर किसी का ध्यान नहीं था।

पिता जी लंबे-लंबे डग भरकर चल रहे थे। उसे उनके साथ चलने में दौड़ना पड़ता था। उसने मैली-सी एक बदरंग कमीज और पट्टेदार नीकरनुमा कच्छा पहन रखा था। जिसे थोड़ी-थोड़ी देर बाद ऊपर खींचना पड़ता था।

स्कूल के बरामदे में पहुँचकर पिता जी पलभर के लिए ठिठके। फिर धीरे-धीरे चलकर इस कमरे से उस कमरे में झाँकने लगे। हर एक कमरे में अँधेरा था। जिसमें बच्चे पढ़ रहे थे। मास्टर कुर्सियों पर उकड़ूँ बैठे बीड़ी पी रहे थे या ऊँघ रहे थे। पिता जी फूलसिंह मास्टर को ढूँढ़ रहे थे। दो-तीन कमरों में झाँकने के बाद एक छोटे-से कमरे की ओर मुड़े। उस कमरे में अन्य कमरों से ज्यादा अँधेरा था। फूलसिंह मास्टर अकेले बैठे बीड़ी पी रहे थे।

उन्हें दरवाजे पर देखकर फूलसिंह मास्टर खुद ही बाहर आ गए थे। पिता जी ने मास्टर जी को देखते ही दयनीय स्वर में गिड़गिड़ाकर कहा, "मास्टर जी, इस जातक (बच्चे) कू अपणी सरण में ले लो। दो अच्छर पढ़ लेगा तो थारी दया ते यो बी आदमी बाण जागा। म्हारा जिनगी बी कुछ सुधर जागी।"

सुदीप पिता जी की उस मुद्रा को कभी भूल नहीं पाया। वे हाथ जोड़कर झुके खड़े थे। फूलसिंह मास्टर ने बीड़ी का टोंटा अँगूठे के इशारे से दूर उछाला और पिता जी को लेकर हेडमास्टर के कमरे में चले गए।

सुदीप का दाखिला हो गया था। पिता जी खुश थे। उनकी इस खुशी में भी वही गिड़गिड़ाहट झलक रही थी। झुक-झुककर मास्टर फूलसिंह को सलाम कर रहे थे।

बस हिचकोले खा-खाकर रेंग रही थी। आसपास के यात्रियों ने बीड़ी-सिगरेट का धुआँ ऐसे उगलना शुरू कर दिया था। जैसे सभी अपनी-अपनी दुश्चिंताओं को धुएँ के

बादलों में विलीन कर देंगे। उसने अपने पास की खिड़की का शीशा सरकाया। ताजा हवा की हलकी-हलकी सरसराहट भीतर घुस आई।

उसकी स्मृति में स्कूल के दिन एक के बाद एक लौटकर आने लगे। दूसरी कक्षा तक आते-आते वह अच्छे विद्यार्थियों में गिना जाने लगा था। तमाम सामाजिक दबावों और भेदभावों के बावजूद वह पूरी लगन से स्कूल जाता रहा। सभी विषयों में वह ठीक-ठाक था। गणित में उसका मन कुछ ज्यादा ही लगता था।

मास्टर शिवनारायण मिश्रा ने चौथी कक्षा के बच्चों से पंद्रह तक पहाड़े याद करने के लिए कहा था। लेकिन सुदीप को चौबीस तक पहाड़े पहले से ही अच्छी तरह याद थे। मास्टर शिवनारायण मिश्रा ने शाबासी देते हुए पच्चीस का पहाड़ा याद करने के लिए सुदीप से कहा।

स्कूल से घर लौटते ही सुदीप ने पच्चीस का पहाड़ा याद करना शुरू कर दिया, वह जोर-जोर से ऊँची आवाज में पहाड़ा कंठस्थ करने लगा, पच्चीस ही कम पच्चीस, पच्चीस दूनी पचास, पच्चीस तिया पचहत्तर, पच्चीस चौका सौ...

पिता जी बाहर से थके-हारे लौटे थे। उसे पच्चीस का पहाड़ा रटते देखकर उनके चेहरे पर संतुष्टि-भाव तैर गए थे। थकान भूलकर वे सुदीप के पास बैठ गए थे। वैसे तो उन्हें बीस से आगे गिनती भी नहीं आती थी। लेकिन पच्चीस का पहाड़ा उनकी जिंदगी का अहम पड़ाव था। जिसे वे अनेक बार अलग-अलग लोगों के सामने दोहरा चुके थे। जब भी उस घटना का जिक्र करते थे, उनके चेहरे पर एक अजीब-सा विश्वास चमक उठता था।

सुदीप ने पच्चीस का पहाड़ा दोहराया और जैसे ही पच्चीस चौका सौ कहा, उन्होंने टोका।

"नहीं बेट्टे...पच्चीस चौका सौ नहीं...पच्चीस चौका डेढ़ सौ..." उन्होंने पूरे आत्मविश्वास से कहा।

सुदीप ने चौंककर पिता जी को ओर देखा। समझाने के लहजे में बोला, "नहीं पिता जी,...पच्चीस चौका सौ...यह देखो गणित की किताब में लिखा है।"

"बेट्टे, मुझे किताब क्या दिखावे हैं। मैं तो हरफ (अक्षर) बी ना पिछाणूँ। मेरे लेखे तो काला अच्छर भैंस बराबर है। फिर बी इतना तो जरूर जाणूँ कि पच्चीस चौका डेढ़ सौ होता है।" पिता जी ने सहजता से कहा।

"किताब में तो साफ-साफ लिक्खा है—पच्चीस चौका सौ..." सुदीप ने मासूमियत से कहा।

"तेरी किताब में गलत बी तो हो सके...नहीं तो क्या चौधरी झूठ बोल्लेंगे। तेरी किताब से कहीं ठाड्डे (बड़े) आदमी हैं चौधरी जी। उनके धोरे (पास) तो ये मोट्टी-मोट्टी किताबें हैं...वह जो तेरा हेडमास्टर है वो बी पाँव छुए है चौधरी जी के। फेर भला वो गलत बतावेंगे...मास्टर से कहणा सही-सही पढ़ाया करे..." पिजा जी ने उखड़ते हुए कहा।

"पिता जी...किताब में गलत थोड़े ही लिक्खा है..." सुदीप रुआँसा हो गया।

"तू अभी बच्चा है। तू क्या जाणे दुनियादारी। दस साल पहले की बात है। तेरे होणे से पहले। तेरी म्हतारी बीमार पड़गी थी। बचने की उम्मेद ना थी। सहर के बड़े डॉक्दर से इलाज करवाया था। सारा खर्चा चौधरी ने ही तो दिया था। पूरा सौ का पत्ता ...यो लंबा लीले (नीले) रंग का लोट (नोट) था। डॉक्दर की फीस, दवाइयाँ सब मिलाकर सौ रुपए बणे थे।

"जब तेरी माँ ठीक-ठाक होके चलण-फिरण लगी तो मैं चार महीने बाद चौधरी जी की हवेली में गया। दुआ सलाम के बाद मैन्ने चौधरी जी ते कहा। चौधरी जी मैं तो गरीब आदमी हूँ। थारी मेहरबान्नी से मेरी लुगाई की जान बच गई। वह जी गई वरना मेरे जातक (बच्चे) बिरान हो जात्ते। तमने सौ रुपए दिए ते। उनका हिसाब बता दो। मैं थोड़ा-थोड़ा करके सारा कर्ज चुका दूँगा। एक साथ देणे की मेरी हिम्मत ना है चौधरी जी। चौधरी जी ने कहा, "मैन्ने तेरे बुरे बखत में मदद करी ती। ईब तू ईमानदारी ते सारा पैसा चुका देना। सौ रुपए पर हर महीने पच्चीस रुपए ब्याज के बनते हैं। चार महीने हो गए हैं। ब्याज-ब्याज के हो गए हैं पच्चीस चौका डेढ़ सौ। तू अपणा आदमी है तेरे से ज्यादा क्या लेणा। डेढ़ सौ में से बीस रुपए कम कर दे। बीस रुपए तुझे छोड़ दिए। बचे एक सौ तीस। चार महीने का ब्याज। एक सौ तीस अभी दे दे। बाकी रहा मूल जिब होगा दे देणा। महीने के महीने ब्याज देते रहणा।"

"ईब बता बेट्टे पच्चीस चौका डेढ़ सौ होते हैं या नहीं। चौधरी भले और इज्जतदार आदमी हैं जो उन्होंने बीस रुपए छोड़ दिए। नहीं तो भला इस जमान्ने में कोई छोड्डे है। अपणे सिव नारायण मास्टर के बाप बड़े मिसिर जी कू ही देख लो। एक धेल्ला बी ना छोड्डे। ऊप्पर ते बिगार (बेगार) अलग ते करावे हैं। जैसे बिगार उनका हक है। दिन भर में गोड्डे टूट जाँ। मजूरी के नाम पे खाल्ली हाथ। ऊप्पर ते गाली अलग। गाली तो ऐसे दें हैं जैसे बेद मंतर पढ़ रहे हों।"

सुदीप ने पच्चीस का पहाड़ा दोहराया। पच्चीस ही कम पच्ची, पच्चीस दूनी पचास, पच्चीस तिया पचहत्तर, पच्चीस चौका डेढ़ सौ...

अगले दिन कक्षा में मास्टर शिवनारायण मिश्रा ने पच्चीस का पहाड़ा सुनाने के लिए सुदीप को खड़ा कर दिया। सुदीप खड़ा होकर उत्साहपूर्वक पहाड़ा सुनाने लगा।

"पच्चीस ही कम पच्चीस, पच्चीस दूनी पचास, पच्चीस तिया पचहत्तर, पच्चीस चौका डेढ़ सौ...

मास्टर शिवरानायण मिश्रा ने उसे टोका, पच्चीस चौका सौ...

मास्टर जी के टोकने से सुदीप अचानक चुप हो गया और खामोशी से मास्टर का मुँह देखने लगा।

मास्टर शिवनारायण मिश्रा कुर्सी पर पैर रखकर उकड़ूँ बैठे थे। बीड़ी का सुट्टा मारते हुए बोले, "अबे ! चूहड़े के आगे बोलता क्यूँ नी ? भूल गिया क्या !"

सुदीप ने फिर पहाड़ा शुरू किया। स्वाभाविक ढंग से पच्चीस चौका डेढ़ सौ कहा।

मास्टर शिवनारायण मिश्रा ने डाँटकर कहा, "अबे ! कालिए, डेढ़ सौ नहीं सौ... सौ !"

सुदीप ने डरते-डरते कहा, "मास्साब ! पिता जी कहते हैं पच्चीस चौका डेढ़ सौ होवे है।"

मास्टर शिवनारायण हत्थे से उखड़ गया। खींचकर एक थप्पड़ उसके गाल पर रसीद किया। आँखें तरेरकर चीखा, "अबे तेरा बाप इतना बड़ा बिदवान है तो यहाँ क्या अपनी माँ...(एक क्रिया—जिसे सुसंस्कृत लोग साहित्य में त्याज्य मानते हैं)...आया है साले; तुम लोगों को चाहे कितना भी लिखाओ, पढ़ाओ...रहोगे वहीं-के-वहीं...दिमाग में कूड़ा-करकट जो भरा है। पढ़ाई-लिखाई के संस्कार तो तुम लोगों में आ ही नहीं सकते। चल बोल ठीक से...पच्चीस चौका सौ...स्कूल में तेरी थोड़ी-सी तारीफ क्या होने लगी पाँव जमीन पर नहीं पड़ते। ऊप्पर से जबान चलावे है। उलटकर जवाब देत्ता है।"

सुदीप ने सुबकते हुए पच्चीस चौका सौ कहा। और एक साँस में पूरा पहाड़ा सुना दिया।

उस दिन की घटना ने उसके दिमाग में उलझन पैदा कर दी। यदि मास्साब सही कहते हैं तो पिता जी गलत क्यूँ बता रहे हैं। यदि पिता जी सही हैं तो मास्साब क्यूँ गलत बता रहे हैं। पिता जी कहते हैं चौधरी बड़े आदमी हैं, झूठ नहीं बोलते। उसके हृदय में बवंडर उठने लगे।

नर्म और मासूम बालमन पर एक खरोंच पड़ गई थी। जो समय के साथ और गहरा गई थी। किसी ने ठीक ही कहा, मन में गाँठ पड़ जाए तो खोले नहीं खुलती। सोते-जागते, उठते-बैठते, पच्चीस चौका डेढ़ सौ उसे परेशान करने लगा।

बालमन की यह खरोंच ग्रंथि बन गई थी। जब भी पच्चीस की संख्या पढ़ता या लिखता, उसे पच्चीस चौका डेढ़ सौ ही याद आता। साथ ही याद आता पिता जी का विश्वास भरा चेहरा और मास्टर शिवनारायण मिश्रा का गाली-गलौज करता लाल-लाल गुस्सैल चेहरा। दोनों चेहरे एक साथ स्मृति में दबाए पच्चीस चौका डेढ़ सौ की अँधेरी दुर्गम गलियों में भटकने लगा। जैसे-जैसे बड़ा होने लगा, कई सवाल उसके मन को विचलित करने लगे। जिनके उत्तर उसके पास नहीं थे।

बस अड्डे से थोड़ा पहले एक बड़ा-सा गति अवरोधक था। जिसके कारण अचानक ब्रेक लगने से बस में बैठे यात्रियों को झटका लगा। कई लोग तो गिरते-गिरते बचे। झटका लगने से सुदीप की विचार तंद्रा भी टूट गई। उसने जेब को छूकर देखा। तनख्वाह के रुपए जेब में सही सलामत थे।

बस गाँव के किनारे रुकी। बस अड्डे के नाम पर दो-एक दुकानें पान-बीड़ी की, एक पेड़ के तने से टिकी पुरानी-सी मेज पर बदरंग आईना रखकर बैठा गाँव का ही बदरू नाई। नाई से थोड़ा हटकर दूसरे पेड़ तले बैठा गाँव का मोची, एक केले-अमरूद वाला। बस यही था बस अड्डा।

सुदीप ने बस से नीचे उतरकर आसपास नजर दौड़ाई। बस अड्डे पर कोई विशेष

चहल-पहल नहीं थी। इक्का-दुक्का लोग इधर-उधर बैठे थे। वह सीधा घर की ओर चल पड़ा। गाँव के पश्चिमी छोर पर तीस-चालीस घरों की बस्ती में उनका घर था।

दोपहर होने को आई थी। सूरज काफी ऊपर चढ़ गया था। उसने तेज-तेज कदम उठाए। लगभग महीने-भर बाद गाँव लौटा था। जानी-पहचानी चिरपरिचित गलियों में उसे अपने बचपन से अब तक बिताए पल गुदगुदाने लगे। इससे पहले उसने कभी ऐसा महसूस नहीं किया था। एक अनजाने से आत्मीय सुख से वह भर गया था। अपना गाँव, अपने रास्ते, अपने लोग। उसने मन-ही-मन मुसकुराकर कीचड़ भरी नाली को लाँघा और बस्ती की ओर मुड़ गया। गाँव और बस्ती के बीच एक बड़ा-सा जोहड़ था। जिसमें जलकुंभी फैले हुए थे।

जलकुंभी का नीला फूल उसे बहुत अच्छा लगता है। इक्का-दुक्का फूल दिखाई पड़ने लगे थे। उसने जोहड़ के किनारे-किनारे चलना शुरू कर दिया।

पिता जी आँगन में पड़ी एक पुरानी चारपाई की रस्सी कस रहे थे। सुदीप को आया देखकर वे उसकी ओर लपके।

"अचानक...क्या बात है...लगता है सहर में जी नी लग्या।"

"नहीं, ऐसी बात नहीं है...बस ऐसे चला आया।" सुदीप ने सहजता से कहा।

जेब से निकालकर तनख्वाह के रुपए उनके हाथ में रखकर, पाँव छुए। पिता जी गद्‌गद हो गए। दोनों हाथों में रुपए थामकर माथे से लगाया जैसे देवता का प्रसाद ग्रहण कर रहे हों। मन-ही-मन अस्फुट शब्दों में कुछ बुदबुदाए। फिर सुदीप की माँ को पुकारा, "दीपे की माँ, करके य्हाँ तो आ...ले सिंभाल अपने लाड़ले की कमाई।"

माँ आवाज सुनकर बाहर आई। आँचल पसारकर रुपए लिये और सुदीप को छाती से लगा लिया। उस क्षण ऐसा लग रहा था जैसे समूचा घर खुशी की बारिश में भीग रहा है।

सुदीप चुपचाप सभी के खिले चेहरे देख रहा था, सब खुश थे, ऊपरी तौर पर तो वह भी मुसकुरा रहा था, लेकिन उसके भीतर एक खलबली मची थी। वह अशांत था।

उसने माँ से कहा, "यहाँ बैट्ठो माँ..." हाथ बढ़ाकर आँचल से कुछ रुपए ले लिये, गंभीर स्वर में बोला, "पिता जी, मुझे आपसे एक बात कहनी है।"

"क्या बात है बेट्टे ?...कुछ चाहिए ?" पिता जी ने जिज्ञासावश पूछा।

"नहीं पिताजी कुछ नहीं चाहिए...मैं आपको कुछ बताना चाहता हूँ।"

पिता जी गुमसुम होकर उसकी ओर देखने लगे। कुछ देर पहले की खुशी पर धुंध फैलने लगी थी। तरह-तरह की आशंकाएँ उन्हें झकझोरने लगी थीं। वे अचानक बेचैनी महसूस करने लगे थे।

सुदीप ने पच्चीस-पच्चीस रुपए की चार ढेरियाँ लगाईं। पिता जी से कहा, "अब आप इन्हें गिनिए।"

पिता जी चुपचाप सुदीप की ओर देख रहे थे, उनकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। असहाय होकर बोले, "बेट्टे, मुझे तो बीस ते आग्गे गिनना बी नी आत्ता, तू

ही गिणके बता दे। सुदीप ने धीमे स्वर में कहा, "पिता जी, ये चार जगह पच्चीस-पच्चीस रुपए हैं। अब इन्हें मिलाकर गिनते हैं...चार जगह का मतलब है पच्चीस चौका..." कुछ क्षण रुककर सुदीप ने पिताजी की ओर देखा। फिर बोले, "अब, अब देखते हैं पच्चीस चौका सौ होते हैं या डेढ़-सौ।"

पिता जी अवाक् होकर सुदीप का चेहरा देखने लगा। उनकी आँखों के आगे चौधरी का चेहरा घूम गया। तीस-पैंतीस साल पुरानी घटना साकार हो उठी। वह घटना जिसे वे अब तक न जाने कितनी बार दोहराकर लोगों को सुना चुके थे। आज उसी घटना को नए रूप में लेकर बैठ गया था सुदीप।

सुदीप रुपए गिन रहा था बोल-बोलकर। सौ पर जाकर रुक गया। बोला, "देखो, पच्चीस चौका सौ हुए...डेढ़ सौ नहीं।"

पिता जी ने उसके हाथ से रुपए ऐसे छीने जैसे सुदीप उन्हें मूर्ख बना रहा है। वे रुपए गिनने का प्रयास करने लगे। लेकिन बीस पर जाकर अटक गए। सुदीप ने उनकी मदद की। सौ होने पर पिता जी की ओर देखा। उन्हें विश्वास ही नहीं हो रहा था। उन्होंने फिर एक से गिनना शुरू कर दिया। बीस पर अटक गए। उलट-पलटकर रुपयों को देख रहे थे, जैसे कुछ उनमें कम हैं। सुदीप ने फिर गिनकर दिखाए। पिता जी को यकीन ही नहीं आ रहा था। सुदीप ने हर बार उनकी शंका का समाधान किया, हर प्रकार से।

आखिर पिता जी को विश्वास हो गया। सुदीप ठीक कह रहा है। पच्चीस चौका सौ होते हैं। झूठ-सच सामने था।

पिता जी के हृदय में जैसे अतीत जलने लगा था। उनका विश्वास जिसे पिछले तीस-पैंतीस सालों से वे अपने सीने में लगाए चौधरी के गुणगान करते नहीं अघाते थे, आज अचानक काँच की तरह चटककर उनके रोम-रोम में समा गया था। उनकी आँखों में एक अजीब-सी वितृष्णा पनप रही थी। जिसे पराजय नहीं कहा जा सकता था। बल्कि विश्वास में छले जाने की गहन पीड़ा ही कहा जाएगा।

उन्होंने अपनी मैली चीकट धोती के कोने से आँख की कोर में जमा कीचड़ पोंछा और एक लंबी साँस ली। रुपए सुदीप को लौटा दिए। उनके चेहरे पर पीड़ा का खंडहर उग आया था। जिसको दीवारों से ईंट, पत्थर और सीमेंट भुरभुराकर गिरने लगे थे। उनके अंतस् में एक टीस उठी, जैसे कह रहे हों, 'कीड़े पड़ेंगे चौधरी...कोई पानी देने वाला भी नहीं बचेगा।'